

सुमित्रा कुमारी रजक

स्नातकोत्तर हिंदी विभाग मगध विश्वविद्यालय बोधगया

लघुकथा

हवाई चप्पल का गौरव

बी.ए. द्वितीय वर्ष के वे दिन भी अजीब थे, जहाँ भविष्य के सपनों से ज़्यादा सुबह की पैसेंजर ट्रेन पकड़ने की फ़िक्र हुआ करती थी। उस रोज़ भी घड़ी की सुइयां भाग रही थीं और मैं उनके पीछे। कॉलेज पहुँचने की उस हड़बड़ाहट में मैं यह भूल ही गई कि पैरों में कॉलेज की सैंडल नहीं, बल्कि घर की मामूली हवाई चप्पलें हैं।

रास्ते में जब सहेली चित्रा की नज़र मेरे पैरों पर पड़ी, तो उसने टोक दिया— "इन चप्पलों में कॉलेज जाओगी?"

वापस घर मुड़ने का अर्थ था ट्रेन का छूट जाना और पूरा दिन बर्बाद होना। तभी याद आया कि रास्ते में ही पूजा का रेलवे क्वार्टर पड़ता है। पूजा, जिसके पिता रेलवे के बड़े अधिकारी थे। मुझे लगा, सहेली ही तो है, मुसीबत में काम आएगी।

मैं उसके घर पहुँची और अपनी दुविधा बताई। पूजा अंदर गई, अपनी माँ से कुछ कानाफूसी की और बाहर आकर मेरे हाथ में एक जोड़ी पुरानी, बेजान सी सैंडल थमा दी। मैंने उस वक्त केवल मदद का भाव देखा, सैंडल की हालत नहीं। अपनी हवाई चप्पलें वहीं उसके बरामदे में छोड़ीं और बदहवास सी स्टेशन की ओर दौड़ पड़ी।

मगर उन सैंडल की उम्र पूरी हो चुकी थी। कॉलेज की दहलीज छूने से पहले ही उनकी एक पट्टी जवाब दे गई। मन छोटा हो गया। एक पल को सोचा कि नई सैंडल खरीद लूँ, पर बटुआ इतना भारी न था। किसी तरह एक मोची ढूँढा, उसकी मरम्मत करवाई और पूरे दिन पैरों को घसीटते हुए क्लास अटेंड की। वह सैंडल नहीं, मानो मेरा स्वाभिमान चुभ रहा था।

शाम को जब मैं वह सैंडल लौटाने पूजा के घर पहुँची, तो मेरे भीतर उसे सहेज कर लाने का एक संतोष था। पर पूजा के अगले वाक्य ने उस संतोष की धज्जियां उड़ा दीं। उसने लापरवाही से कहा— "अरे, ये सैंडल तो तुम ही रख लो, मेरे किस काम की!"

उसके उन शब्दों ने जैसे मेरे आत्मसम्मान पर सीधा प्रहार किया। अचानक मुझे समझ आया कि उसने मुझे सहेली समझकर मदद नहीं की थी, बल्कि पुराने सामान से छुटकारा पाने के लिए मुझे एक 'पात्र' समझा था। उसकी आँखों में वह बराबरी का भाव नहीं, बल्कि एक कृत्रिम बड़प्पन था।

मैंने शांति से अपनी पुरानी हवाई चप्पलें पहनीं और उसे साफ़ शब्दों में कहा—

"पूजा, इन्हें अपने पास ही रखो या किसी ज़रूरतमंद को दे देना। मैं कल से इन चप्पलों में ही कॉलेज आ जाऊंगी, पर अब तुमसे कभी मदद नहीं मांगूंगी। अगर तुमने मुझसे कुछ माँगा होता, तो मैं अपनी सबसे प्रिय वस्तु तुम्हें देती और सहेली होने के नाते खुद पर गर्व करती। पर तुमने अपनी पुरानी चीज़ देकर मुझे छोटा महसूस कराया है। आज से तुम्हारी जैसी सहेली मुझे नहीं चाहिए।"

मैं मुड़ी और तेज कदमों से बाहर निकल आई। उस दिन सड़क पर चलते हुए मुझे अपनी उन हवाई चप्पलों की आवाज़ में एक अजीब सा गर्व महसूस हो रहा था। वह टूटी सैंडल तो मोची ने ठीक कर दी थी, पर उस दिन मेरी दोस्ती का जो धागा टूटा, उसे फिर कोई नहीं जोड़ सका।...

लेखकीय टिप्पणी:

"अक्सर हम गरीबी का पैमाना फटे कपड़ों या पुरानी चप्पलों से तय करते हैं, लेकिन असल दरिद्रता तो उन विचारों में है जहाँ मदद को 'एहसान' और दोस्ती को 'दान' समझ लिया जाता है। यह कहानी केवल एक सैंडल के टूटने की नहीं, बल्कि एक भ्रम के टूटने की है। आत्मसम्मान की हवाई चप्पल, उधार के महँगे सैंडल से कहीं ज़्यादा आरामदायक होती है।""उधार का बड़प्पन ओढ़ने से बेहतर है अपनी सादगी में गर्व के साथ जीना।"